अध्याय : 3

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में परिवर्तित व्यक्तिवादी एवं अस्तित्वबोधपरक जीवन-मूल्य

अध्याय : 3

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में परिवर्तित व्यक्तिवादी एवं अस्तित्वबोधपरक जीवन-मूल्य

भूमिका

व्यक्तिवाद में व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ मान कर उसका विवेचन किया जाता है। उसमें व्यक्ति का महत्व व्यक्ति की स्वतंत्रता आदि पर बल बया जाता है। व्यक्तिवाद के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण विचार यह भी है कि, उसमें अस्तित्वबोध का ही दर्शन होता है। अस्तित्वबोध और अस्तित्ववाद में कुछ अन्तर होता है, अस्तित्ववाद शब्द में विचारधारा प्रमुख रहती है लेकिन अस्तित्वबोध में यह कल्पना होती है कि, मनुष्य को अपने अस्तित्व का बोध किसी-न-किसी कारण हो जाता है और उस बोध के अनुसार वह अपना जीवन यापन करता है। अस्तित्वबोध मानव के स्वयं के विचारों को क्रिया-व्यापार कराने के लिए अवगत कराता है। साहित्य में अस्तित्वबोध का सीधा सम्बन्ध पात्र सृष्टि से रहता है, इसी कारण इसके अन्तर्गत पात्र स्वयं अपने अस्तित्व सम्बन्धी विचार प्रकट करते हैं। इन पात्रों द्वारा जो क्रिया-कलाप किया जाता है, उससे भी उनका अस्तित्व-बोध प्रकट होता है। वास्तव में अस्तित्ववाद एक स्वतंत्र दर्शन या विचार धारा होने के कारण सीमित है, और उसके अनुपात में अस्तित्वबोध व्यापक है। अस्तित्ववाद के तत्व अस्तित्वबोध में सन्निहित रहते हैं।

मानवी जीवन और मानवीय नीति का यथार्थ परक विश्लेषण करना, मनुष्य की स्वतंत्रता को अत्यधिक स्थान देना, निरन्तर अपनी इच्छा के अनुसार उपर

उठते रहना आदि बातों का समावेश इसमें उपलब्ध होता है। परिवर्तित जीवन-मूल्यों में अस्तित्वबोध अपना विशेष महत्व रखता है, जिसका विवेचन करना प्रस्तुत अध्याय में हमारा मन्तव्य है।

व्यक्तिवाद : अर्थबोध

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार व्यक्तिवाद शब्द अंग्रेजी के "इनडिविडुवालीसम्" शब्द का अनुवाद है, जिसका प्रयोग युरोप में कुछ पारिभाषिक अर्थों में हुआ है। अलक्सीस दे टोक्विले ने जिसने इस शब्द को स्थापित किया, इसका प्रयोग मर्यादित व्यक्ति स्वातंत्र्य के अर्थ में किया है। मानव का मुख्य संबंध उसके परिवार और मित्रों से होना चाहिए।"[1] इसी कोश के ग्रन्थ के अनुसार व्यक्तिवाद का प्रयोग "लिबरालीजम" के अर्थ में भी होता है। दोनों सिद्धान्त व्यक्ति के स्वातंत्र्य को शीर्षस्त महिमा देते हैं।[2] अर्थात व्यक्तिवाद का मूल आधार व्यक्ति का स्वातंत्र्य ही है। हिन्दी विश्वकोशे के अनुसार, "साधारण अर्थ में स्वार्थ की समर्थन की अथवा विशिष्ट समझे जाने वाले व्यक्तियों की महत्ता स्वीकार करने की प्रवृत्ति, दर्शन में प्रत्येक व्यक्ति को विशिष्ट ठहराने की प्रवृत्ति।"[3] अर्थात व्यक्तिवाद में व्यक्ति को प्रधानता देने का प्रयास किया गया है। संसार में व्यक्ति की महत्ता को स्वीकारना ही व्यक्तिवाद की नींव है। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोन के अनुसार व्यक्तिवाद पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। प्रकाश दीक्षित के अनुसार "व्यक्तिवाद के लिए एकमात्र यथार्थ, "मैं" था और समूचा संसार इसी "मैं" की शासित सत्ता थी।"[4] संक्षेप में व्यक्तिवाद में व्यक्ति को केंद्र में रखने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसका विवेचन किया जाने लगा।

व्यक्तिवाद का उद्‌भव और विकास

व्यक्तिवाद मानव व्यक्तित्व की एक विशिष्टता है। व्यक्तिवाद में मानव के व्यक्तित्व का और उनके व्यक्तिगत क्रिया-कलापों का महत्व निर्विवाद है। आधुनिक युग में जितनी भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्रान्तियाँ हुई हैं, उनमें युरोप का योगदान उल्लेख्य है। आधुनिक युग संदर्भ में व्यक्तिवाद का बीज पूँजीवाद में निहित है। पूँजीवादी व्यवस्था ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया है। वैज्ञानिक प्रगति और नये-नये आविष्कारों का युरोप में जब विस्फोट हुआ तब नये-नये परिवर्तन होने लगे। इन परिवर्तनों ने समाज का ढाँचा ही परिवर्तित किया। विभिन्न उद्योगों की शुरूआत हुई। बड़े-बड़े औद्योगिक शहर स्थापित हुए। मजदुरों की संख्या बढ़ी। गाँव से शहर की ओर जाने का आकर्षण तेज हुआ। परिणामतः संयुक्त परिवार टूट गये और पारिवारिक मूल्यों का विघटन तेजी से होने लगा। विज्ञान की शक्ति ने प्राचीन परम्परा को तोड़-मरोड दिया। मशिनीकरण की प्रवृत्ति के कारण एक नयी जीवन प्रणाली का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप मानवीय संबंधों पर आँच आने लगी। डॉ॰एन्॰के॰जोसफ के अनुसार, "नये पूँजीवाद के अविर्भाव ने आर्थिक व्यक्तिवाद का बीज बोया।"[5] संक्षेप में औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्तिवादी विचारधारा के विविध आयामों को उभारने में सहायता प्रदान की है। व्यक्तिवाद के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण विचार यह भी है कि, आज का अस्तित्ववाद व्यक्तिवादी दर्शन का विकसित रूप है।

व्यक्तिवाद का परिपोषक अस्तित्ववाद

मानव जीवन में व्यक्ति का महत्व निश्चय ही है। व्यक्ति का व्यक्तित्व और तद्‌नुरूप उसका कार्य मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसीकारण आधुनिक युग में व्यक्तिवादी दर्शन को एक मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। व्यक्तिवाद में उसके अस्तित्व की जो चर्चा की जाती है, उसे अस्तित्ववादी मूल्य से संबोधित किया जाता है। इसप्रकार कहा जा सकता है कि, मानव के परिवर्तित जीवन-मूल्यों में व्यक्तिवाद का विकसित एवं रूपांतरित मूल्य अस्तित्ववादी जीवन दर्शन है। इस संदर्भ में डॉ॰एन॰के॰जोसफ के विचार यथार्थ लगते हैं - "सभी

बातों के केंद्र में व्यक्ति को रखने की प्रवृत्ति बलवति होने लगी। कालान्तर में व्यक्ति की अर्थवत्ता का अन्वेषण अस्तित्ववादी दर्शन में एक नया मोड़ ग्रहण करने लगा।"[6] स्पष्ट है कि, व्यक्तिवाद के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण विचार यह है कि अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद का ही विकसित रूप है क्योंकि अस्तित्ववादी दर्शन ने व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि को सबसे अधिक समर्थन दिया है। अतः अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद का परिपोषक है।

अस्तित्वबोध और अस्तित्ववाद

अस्तित्वबोध और अस्तित्ववाद में सूक्ष्म अन्तर है। अस्तित्व शब्द किसी दर्शन या विचारधारा को स्पष्ट करने वाला शब्द है। परन्तु बोध शब्द में व्यक्ति को किसी कारणवश कुछ बातों का बोधे हो जाता है और वह उसी बोध के अनुसार जीवन यापन करता रहता है। अस्तित्वबोध का मलतब है कि किसी कारणवश मानव को अपने अस्तित्व का बोध हो जाता है। यही अस्तित्व बोध स्व-विचारों को और क्रिया-व्यापारों को अवगत कराता है। साहित्य में अस्तित्व बोध का सीधा संबंध पात्र सृष्टि से रहता है। लेखक पात्र की सृष्टि करता है, तब उसके अन्तस में पात्र के प्रति कुछ धारणाएँ या संकल्पनाएँ निर्माण होती हैं। उन धारणाओं को या संकल्पनाओं को प्रयुक्त कर पात्रों की सृष्टि की जाती है। इसी कारण पात्रों का अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है इसका बोध प्रथम लेखक को होता है। पात्र स्वयं अपने अस्तित्व संबंधि विचार स्पष्ट करते हैं। इन पात्रों द्वारा जो क्रिया-कलाप किया जाता है, उससे उसका अस्तित्वबोध प्रकट होता है। जब पाठक इस रचना को पढ़ता है, तब उन पात्रों के अस्तित्व के बारे में कुछ धारणाएँ तैयार होती है। फिर पाठक के मन में पात्रों के अस्तित्व के प्रति विशिष्ट धारणा निर्माण होती है। अस्तित्व-बोध में अस्तित्व वाद के तत्व सन्निहित रहते हैं, जिसका वर्णन प्रस्तुत अध्याय में करना हमारा मंतव्य है।

अस्तित्व : अर्थबोध

हिन्दी "अस्तित्व" शब्द अंग्रेजी के शब्द का पर्यायवाची है। बृहद् अंग्रेजी हिन्दी कोश के अनुसार का अर्थ है अस्तित्व,

सत्ता, स्थिति, विद्यमानता, जीवन पद्धति, जिन्दा रहने का ढंग आदि।[7] प्रथम विश्वयुद्ध के इस शब्द को दार्शनिक रूप में ग्रहण किया गया। इसके अनुसार इसमें केवल मनुष्य ही आता है।[8] कुछ चिन्तकों ने इस शब्द का प्रयोग केवल मनुष्य के लिए ही किया है। इसमें मानवीय जीवन और मानवीय नीति का विश्लेषण मिलता है। मनुष्य की स्वतंत्रता को अत्यधिक स्थान दिया गया है। अस्तित्व का अर्थ ही निरन्तर अपने इच्छा नुसार उपर उठते रहना है। "अस्तित्ववाद मृत्यु को प्रधान मानकर निर्देशक निर्णायक मानता है। व्यक्ति की यह चुनने की शक्ति सार्थक क्षणों में से निर्णय करने की संकल्प विकल्प शक्ति ही मनुष्य की स्वतंत्रता की शर्त है।"[9] अर्थात अस्तित्ववाद में वैयक्तिकता, स्वतंत्रता और चयन आदि बातें निहित रहती हैं।

अस्तित्ववाद का उद्‌भव और विकास

अस्तित्ववाद का दर्शन पाश्चात्य विद्वानों की देन है। इसमें व्यक्ति की महत्ता को वर्णित किया गया है। यह दर्शन तत्कालीन परिस्थिति की देन है। फ्रान्सिसी राज्यक्रान्ति, दो विश्वयुद्ध, विज्ञान का बढ़ता प्रभाव आदि बाते इसकी मूल प्रेरणाएँ हैं। सोरेन किर्केगार्ड को इसका जनक माना जाता है। युरोप की तत्कालीन परिस्थितियों ने किर्केगार्ड को इस दिशा की ओर मूड़ने बाध्य किया। औद्योगिक क्रान्ति ने परम्परागत जन-जीवन विशृंखलित कर दिया। अतः मानव का धर्म ईश्वरता के प्रति विश्वास टूटता गया। ऐसी स्थिति में किर्केगार्ड ने अपने वैयक्तिक विचारों को प्रधानता दी। उसके हृदय में क्राइस्ट के प्रति आस्था थी। परन्तु धर्म के कड़े बन्धन और चर्च के नियंत्रण कार्य रूप के प्रति उसने अनास्था दिखायी। व्यक्ति समानता का महत्व प्रतिपादित किया। इसीकारण वह अस्तित्ववाद का जनक कहलाया जाता है।

किर्केगार्ड के पश्चात नीत्शे ने भी प्रचलित परंपरावादी धर्मियों का विरोध किया। "ईश्वर की मृत्यु हो चुकी है, ईश्वर मृत्यु के रूप में शेष है और हमने ईश्वर को मार डाला है।"[10] इसीकारण उसे अनिश्वरवादी अस्तित्व का समर्थक कहा गया। यास्पर्स, गॅब्रीयल, सार्त्र आदि दार्शनिकों ने भी अस्तित्ववाद पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। इस चिन्तन प्रणाली में दो प्रवाह प्रवाहित हैं - एक अल्वीयर कामु का और दो गॅब्रीयल मार्शल का। कामु ने अनीश्वरीय अस्तित्व प्रवाह

को स्पष्ट किया। अतः अस्तित्ववाद में ईश्वरवादी अस्तित्व और अनिश्वरवादी अस्तित्व ये दो धाराएँ मिलती हैं।

व्यक्तिवादी एवं अस्तित्वबोध पर उपन्यास

साहित्य में युगानुकूल व्यक्तिवाद का अविर्भाव हुआ है, क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपने युग से प्रभावित होता है, और युग का चित्रण अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है। व्यक्तिवादी साहित्य का जन्म भी साहित्यकार के व्यक्तिगत विचारों को प्रधानता देकर लिखा जाता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में जो व्यक्तिवादी उपन्यास लिखे गये है, उनमें लेखक के विचारों को ही प्रधानता रही है। व्यक्तिगत जीवन दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान और व्यक्तिगत जीवन समस्याओं का निरूपण उसमें प्राप्त होता है। डॉ॰सुषमा धवन के अनुसार, "व्यक्तिवादी उपन्यासों के अन्तर्गत जीवन और जगत् की समस्याओं का समाधान अथवा उनकी उपादेयता का मूल्यांकन व्यक्ति मंगल की मूलवर्ति भावना से हुआ। व्यक्तिवादी उपन्यास और मनोविश्लेषण उपन्यास की बीच की कड़ी है।"[11]

इन उपन्यासों में मानव अपने-अपने जीवन के विविध पहलू, धारणाएँ, मान्यताएँ और दृष्टिकोन प्रतिपादित किये जाते हैं। पात्रों की मनःस्थितियों का अंकन सक्षम रूप में किया जाता है। व्यक्तिगत जीवन घटना, व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत दर्शन, मनोविज्ञान और समस्याओं का लेखा-जोखा इनमें प्राप्त होता है। इन उपन्यासों के पात्र रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना रखते है। इसके साथ-साथ इस दर्शन में वैयक्तिक अस्तित्व बोध, स्वतंत्रता और चयन बोध, परिवेश पीड़ा और आत्मबोध, क्षणबोध, भीतरी संघर्ष, संत्रास, कुंठा, घुटन, अजनबीपन और अलगाव आदि बातों का इस दर्शन में विचार किया गया है। भगवतीचरण वर्मा का "चित्रलेखा", जैनेंद्रकुमार का "सुनीता", "त्यागपत्र","कल्याणी",अज्ञेय का "नदी के द्वीप", "अपने-अपने अजनबी", उपेन्द्रनाथ अश्क का "शहर" में घूमता आइना, धर्मवीर भारती का "गुनाहों का देवता", उषा प्रियम्वदा का "रूकोगी···नहीं···राधिका" आदि लेखकों ने अपनी-अपनी इन कृतियों में व्यक्तिगत विचारों को ही प्रधानता दी है।

इसी परम्परा में दीप्ति खण्डेलवाल के तीन उपन्यास - "प्रिया", "कोहरे", "प्रतिध्वनियाँ" व्यक्तिवादी चेतना के आधुनिक उपन्यास हैं।

अस्तित्ववादी चिन्तन में ईश्वरीय, अनिश्वरीय बोध

अस्तित्ववादी विचारधारा के चिन्तकों ने ईश्वर को लेकर दो विचारधाराएँ प्रतिपादित की है। एक विचारधारा ईश्वर अस्तित्व को मानने के पक्ष में है तो दूसरी विचारधारा ईश्वरीय अस्तित्व को नकारने के पक्ष में है। ईश्वरीय अस्तित्व का समर्थन करने वाले प्रमुख चिन्तक हैं - किर्केगार्ड,कार्ल यास्पर्स , गॅब्रीयल मार्शल तो अनिश्वरीय अस्तित्व का समर्थन एडगर, जांपाल सार्त्र आदि चिन्तकों ने किया है।

1· **ईश्वरीय अस्तित्व-बोध**

ईश्वरीय अस्तित्व के अन्तर्गत ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया है। परन्तु व्यक्ति के अस्तित्व का उत्तरदायी ईश्वर नहीं। व्यक्ति जब अपने को असहाय पाता है, तब वह ईश्वर की शरण में जाता है और अपना अस्तित्व बनाने का प्रयास करता है। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यास में ईश्वर विषयक आस्था भाव रखने वाले कुछ नारी पात्र दिखाई देते हैं।

श्यामा : "कोहरे" उपन्यास की श्यामा मेजर सिन्हा की पत्नी है। मेजर सिन्हा और श्यामा के व्यक्तित्व में बेहद अन्तर है। मेजर सिन्हा आधुनिक खयालों वाले आदमी हैं तो श्यामा पुराने खयालों वाली नारी है। दोनों के बीच पहले से ही दरार निर्माण हो जाती है। मेजर सिन्हा बार-बार उसे नीचा दिखाते हैं। इतना ही नहीं तो "मेजर की पत्नी के स्थान पर उसे मंगल धोबी की पत्नी होना चाहिए था"[12] ऐसा भी कहते हैं। पति के इस व्यवहार से दुखी बनी श्यामा ईश्वर में आस्था रखती है।"[13] उसके मन में अटूट आस्था है कि ईश्वर उसके अस्तित्व को बनाये रखेगा। विविध नारियों के प्रति आकर्षित हुए पति को रास्ते पर लाएगा। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए वह ईश्वर का सहयोग आवश्यक मानती है।

उसका यह दृष्टिकोन परिवर्तित जीवन संदर्भ में ईश्वरीय बोध का द्योतक है।

2· **अनिश्वरीय अस्तित्व-बोध**

अनिश्वरीय अस्तित्व में ईश्वर के अस्तित्व को नकारा गया है और मनुष्य को ही निर्माता और रक्षक स्वीकारा गया है। मूल्य का निर्माता भी वह स्वयं ही है। दोस्तावस्की का कहना है कि, "ईश्वर को अमान्य घोषित करके हम अन्य बातों को मान्यता प्रदान कर सकते है।"[14] दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में कुछ पात्र ऐसे भी है कि जो परिस्थितिवश ईश्वर को नकार देते हैं। परिस्थिति के चक्रव्युह में फँसी हूई नारी अनंत यातनाएँ सहने के बाद इतनी व्यथित हो उठती है कि उसे ईश्वर के प्रति भी अनास्था निर्माण हो जाती है।

सौदामिनी : सौदामिनी अध्यापिका नारी है। उसने अपने जीवन में अनंत यातनाओं को सामना किया है। पति के रूप में एक मानो एक भेड़िया का स्वीकार उसने किया था। इस बात का बोध जब उसे प्राप्त होता है, तब वह पतिगृह से पलायन कर अपने बाबा के घर वापस चली आती है, और अपनी दो बेटियों का और बूढ़े पिताजी का भरण-पोषण करती हैं। प्रारम्भ में तो उसके हृदय में ईश्वर के प्रति आस्था थी। परन्तु जब परिस्थितियाँ उसे बुरी तरह से कुचल देती है, तब वह ईश्वर के प्रति अनास्थावान बन जाती है। उसकी बड़ी बेटी उसका घर छोड़कर प्रेमी के साथ भाग जाती है, और जाते-जाते माँ को ऐसा डंख मारती है, कि जिससे माँ की आत्मा तिलमिला उठती है, जिससे उसके मन में ईश्वर के प्रति आस्था रहती है और न ही व्रत उपवास के प्रति। उसकी बेटी प्रिया उसे कहती है कि, "आज तो जन्माष्टमी है माँ उपवास नहीं रखोगी ? अगरबत्ती नहीं जलाओगी ?"[15] तब माँ असहज हो उठती है और बेटी को कहती है कि, "अब मुझे कोई उपवास नहीं करना है। आज से हमारे घर में कोई उपवास नहीं करेगा।"[16] सौदामिनी का यह कथन उसकी ईश्वर के प्रति निर्माण हुई अनास्था का द्योतक है। परिस्थिति के कारण भी कभी-कभी मानव के जीवन-मूल्यों में परिवर्तन नज़र आता है।

डा·मनसिज : "प्रिया" उपन्यास के डा·मनसिज प्रेतों का पोस्ट-मार्टम करने वाले डाक्टर हैं। उनके मन में धर्म तथा ईश्वर के प्रति अनास्था दिखाई देती है। वे अपनी प्रेमिका प्रिया को कहते हैं कि, "मंदिर में किसी पत्थर के सामने आँख मूँदने के ढोंग से तुम्हारी जैसी जीती-जागती हाड-मांस की प्रतिमा को आँखों में डूब जाना मनसिज की क्लीयर कट फिलॉसॉफी है।"[17] डा·मनसिज आधुनिक शिक्षित युवक है। वे आधुनिक युग के वातावरण से प्रभावित हैं। आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति का विशेष प्रभाव है। अतः उसी प्रभाव के कारण वे अपने जीवन में ईश्वर के स्थान पर भोगवादी संस्कृति को अपनाना चाहते है। जो जीवन उन्हें मिला है, उस जीवन को केवल उपभोग में ही व्यतीत करना चाहते है, यही उनका जीवन दर्शन है। अतः ईश्वर के प्रति अनास्थावान बनना युग परिवर्तन का ही परिणाम लगता है।

3· **वैयक्तिक अस्तित्व-बोध**

अस्तित्व वाद में व्यक्ति प्रतिष्ठा को महत्वपूर्ण माना गया है। वह अपने जीवन में अपने निर्णयों के द्वारा अपने अस्तित्व को अर्थ देता रहता है। अपने जीवन में जो कुछ करता है, सोचता है और योजना बनाता है उन सभी का जिम्मेदार वह स्वयं होता है। डाक्टर शामसुन्दर मिश्र के अनुसार, "विशिष्ट स्थितियों में व्यक्ति विशिष्ट चयन करता है और जिसके कारण मानवीय अस्तित्व का धरातल यह विशिष्ट चयन द्वारा प्राप्त अनुभूति एक ठोस विचार और अपेक्षाओं को जन्म देती है। यह व्यक्ति का संभाव्य अस्तित्व रूप है, जिसे वह चेतना के धरातल पर जीना प्रारंभ कर देता है।"[18] विवेच्य उपन्यासों में वैयक्तिक अस्तित्व-बोध को उजागर करने की कोशिश की गयी है।

सिमी : "कोहरे" उपन्यास की नायिका सिमी शिक्षित नायिका है। उसका विवाह डा·सुनील के साथ हो जाता है। सुनील पढ़ा-लिखा आदमी जरूर है लेकिन पुरूषप्रधान संस्कृति का अहम् उसके व्यक्तित्व में प्रचुर मात्रा में है। वह अपनी पत्नी सिमी को अपने इशारों पर नचवाना चाहता है। संवेदनशील हृदय की सिमी को यह बात उचित नहीं लगती। सिमी स्वयं एक अच्छी गायिका है पर सुनील उसे रेडियो पर गाने के लिए अनुमति नहीं देता। वह अच्छी कवयित्री

भी है, पर वह उसे कविताएँ छपवाने नहीं देता। पति के इस आचरण से वह तंग आकर विद्रोह पर उतर आती है। पति को फटकारते हुए कहती है - "यह तुम्हारी ज्यादती है कि तुम मुझे कुचल ही देना चाहते हो···क्या मैं इतनी साधारण हूँ कि तुम मुझे ऐसे मिटा दोगे।[19] विशिष्ट स्थितियों के कारण वह विद्रोही बनती है और पति को चुनौति देकर अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती है। इतना ही नहीं तो अपने वैयक्तिक अस्तित्व के लिए वह कानूनी तौर पर सुनील से अलग हो जाती है। शिक्षित सिमी का यह आचरण उसके वैयक्तिक अस्तित्व को ही उजागर करता है। आज की नारी पति अन्याय, अत्याचारों को सहना नहीं चाहती, अपितु अन्यायी, अत्याचारी पति को तलाक़ देकर नयी जिन्दगी शुरू करती है। उसका यह रूप आधुनिक जीवन दर्शन में अस्तित्व वाद को अधिकाधिक मान्यता मिलती है, जिसका प्रतिबिंब उपन्यासों में दिखाई देता है।

मोतीबाई : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास की मोतीबाई वेश्या नारी है। अपने मोहक रूप यौवन का सौदा करने वाली यह नारी किसी भी खरीददार के साथ बार-बार बिकी जाती है। बेचा जाना उसके जीवन प्रणाली का एक अंग है। परंतु इस क्रय-विक्रय में अपनी वैयक्तिकता पर वह आँच आने नहीं देती। जब नीलकान्त मेहता उसे अपनी बीबी बनाना चाहता है तब वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि, "मैं अपकी फरमावरदार बीवी हूँ···आप भी हुजूर फान्सा देवी बनाने के चक्र में बेकार वक्त जाया करते हैं आओ मेरे पहलू में पहलू को गर्म कीजिए, कीमत दीजिए। इस पहलू में टिकने की या इसे खरीदने की कोशिश मत कीजिए।"[20] मोतीबाई का यह कथन उसके वैयक्तिक अस्तित्व का बोध उजागर करता है। वह किसी के हाथों की कठपुतली बनना नहीं चाहती। अपनी मर्जी से अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है। पैसों के बदले में शरीर तो सौंप देती है परन्तु अपने वैयक्तिक विचारों पर किसी को हावी होने नहीं देती। नीलकान्त जैसे प्रतिष्ठित मेयर आदमी को भी वह नकारती है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, वह भले ही नारी क्यों न हो पर अपनी वैयक्तिकता को बनाए रखना चाहती है।

4· स्वतंत्रता और चयन बोध

अस्तित्ववादी चिन्तकों ने मानव की स्वतंत्रता पर बल दिया है। सार्त्र के अनुसार मनुष्य स्वतंत्रता के आधार पर ही अपना अलग संसार निर्माण करता है। किर्केगार्ड के अनुसार अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए व्यक्ति को निर्णय लेना ही पडता है और उस निर्णय पर पहुँचना ही पडता है। स्वतंत्रता से किया गया चुनाव ही मानव अस्तित्व के मूल में होता है। चयन की स्वतंत्रता के कारण ही मानव विकास कर पाता है। विवेच्य उपन्यासों में ऐसे भी पात्र दिखाई देते हैं, जो स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेते हैं और उस निर्णय के अनुसार जीवन यापन करते हैं। आधुनिक काल में पारिवारिक मूल्यों का विघटन हो रहा है, जिसका प्रतिबिंब इन उपन्यासों में स्पष्टतया परिलक्षित होता हैं। परिवार वालों की परवाह न करते हुए जीवन संबंधी निर्णय लेना आधुनिक की प्रवृत्ति है। चाहे पुरूष हो या नारी वे अपनी मर्जी के अनुसार स्वतंत्रता से चयन करते हैं। तो कभी-कभी परिस्थितिवश उन्हें किसी बात का चयन करना पडता है।

चित्रा : "प्रिया" उपन्यास की चित्रा सौदामिनी की बड़ी बेटी है। वह दिखने में साधारण है। उसने अधिक पढ़ाई भी नहीं की है परंतु वह अपने जीवन का निर्णय खुद लेती है। परिवार वालों की मर्जी के खिलाफ आचरण करती है। मनचाहे प्रेमी के साथ फिल्म देखने जाती है। जब माँ उसे रोकने का प्रयास करती है तब वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना निर्णय माँ को सुनाती है कि, "मैं सुरेश से प्रेम करती हूँ···सुरेश भी मुझ पर जान देता है। हम एक दूसरे से अलग नहीं होंगे। देखूँगी तुम मुझे कैसी रोकती हो।"[21] प्रिया का उपर्युक्त कथन उसकी स्वतंत्र निर्णय क्षमता का द्योतक है। अपने निर्णय के खातिर वह परिवार वालों के हृदय को चोंट पहुँचाती है। इतना ही नहीं तो एक दिन सुरेश के साथ भाग जाती है और वैवाहिक जीवन यापन करती है।

निशीथ : "कोहरे" उपन्यास का निशीथ मेजर सिन्हा का बेटा है। मेजन सिनहा ने अपने बेटे को अपने ढंग से जीने का अधिकार पहले से ही दे दिया था। अतः निशीथ बचपन से ही स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेता रहा। आगे चलकर

तो वह किसी भी निर्णय पर माता-पिता की राय लेने की आवश्यकता भी महसूस नहीं करता। वह ऐंजेला के साथ विवाह करके घर आता है और अपनी ममी से कहता है - "ममी ये ऐंजेला है, याने की अंजू, तुम्हारी बहू। माफ करना ममी तुमसे या पापा से इजाजत नहीं ले सका···सच तो यह है कि, मैंने इजाजत लेने की जरूरत ही नहीं समझी। शादी मेरी और ऐंजीला की हो रही थी, आप दोनों की तो नहीं।"[22] निशीथ का यह कथन स्पष्ट कर देता है कि अब बेटे या बेटियों के विवाह के प्रति माता-पिता का सहयोग बिलकुल आवश्यक नहीं है। माता-पिता अब केवल उनको जन्म देने के हकदार ही रहे हैं। वे उनके जीवन के बारे में कोई भी निर्णय नहीं ले सकते, यही आधुनिक जीवन की प्रणाली बनती जा रही है। स्वतंत्रता से चयन किया गया मार्ग अपनाने के लिए नयी पीढ़ी उत्सुक है।

शुभ्रा पटेल : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास की शुभ्रा पटेल प्रथम श्रेणी में एम्·एस्सी·की पदवी प्राप्त करती है। कालेज के दिनों में ही वह नीलकान्त की ओर आकर्षित होती है। परन्तु नीलकान्त उसे धोखा देता है। उसकी आर्थिक स्थिति को देखकर वह उससे मूँह मोड लेता है और एक धनवान की बेटी को पत्नी के रूप में अपनाता है। जब एक दिन अचानक वे दोनों मिल जाते हैं तब शुभ्रा पटेल अपने विवाह संबंधि निर्णय को उसके सामने स्पष्ट करती है। वह नौकरी करके तथा आत्मनिर्भर बनकर स्वयं की जिन्दगी तो सँवार सकती थी, परंतु अपनी बुढी माँ और दो जुड़वा भाईयों के खातिर वह ब्रिगेडियर कोहली से विवाह करने का निर्णय कर लेती है। ब्रिगेडियर कोहली उससे दुगुनी आयु वाले इन्सान थे, परंतु उन्होंने शुभ्रासहित उसकी माँ और दोनों भाईयों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उठायी थी। अतः परिवार के लिए उसने स्वतंत्रतापूर्वक तो निर्णय लिया। उस निर्णय पर अन्त तक अटल रहती है।

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों में आत्मनिर्भरता दिखाई देती है। ये पात्र समाज तथा परिवार की उपेक्षा कर अपनी स्वतंत्रता तथा चुनाव को महत्व देते हैं। अपने जीवन में किसी भी बात का निर्णय उस पर ही

निर्भर रहता है। वह अपनी चयन स्वतंत्रता खोना नहीं चाहती।

सौदामिनी : सौदामिनी शहर के मशहूर नेता यशवन्त की पत्नी है। वह पढ़ी-लिखी है। उसके वक्तृत्व पर आकृष्ट होकर नेता यशवंत उसके साथ विवाह करते हैं। विवाहोपरान्त जब वह पति के घर में प्रवेश करते हैं तब उसे ज्ञात होता है कि उसके आगमन के पूर्व ही एक और पत्नी घर में मौजूद है। नेता यशवंत की उस पत्नी ने बड़े जहरीले शब्दों से उसका स्वागत किया। परंतु सौदामिनी ने सभी बातों को सहजता से लिया। अचानक एक दिन पति का असली रूप उसके सामने खुल जाता है, तब वह मोहभंग से आहत होती है, टूट जाती है। लेकिन अपने अस्तित्व का विलियन पति के व्यक्तित्व में करना नहीं चाहती। बच्ची को लेकर पतिगृह से पलायन करती और अपने पिता के पास आकर अध्यापिका की नौकरी करने लगती है। परिवार की पूरी जिम्मेदारी उठाती है। धनवान नेता के सोने के पिंजड़े में रहने की अपेक्षा आत्मनिर्भर बन जीवन यापन करना पसन्द करती है और स्वतंत्रता पूर्वक किये गये चयन पर अंत तक अड़िग रहती है।

प्रिया : "प्रिया" उपन्यास की नायिका प्रिया शिक्षित नारी है। उसने एम्·ए·,बी·एड्·तक शिक्षा प्राप्त की है। कालेज के दिनों में वह देवदास नामक युवक को चाहलने लगती है। परन्तु देवदास की आर्थिक स्थिति ठिक न होने के कारण उसकी माँ उसे विवाह करने से रोकती है। तत्पश्चात उसके पिता उसका विवाह निश्चित करते हैं और उस नियोजित वर के साथ घूमने के लिए भेज देते हैं। परंतु वह लड़का प्रिया को छोड़कर विदेश चला जाता है। तत्पश्चात उसके जीवन में डा·मनसिज आता है। परंतु मनसिज के प्रति भी वह उदासीन बन जाती है और स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेती है कि अब वह विवाह नहीं करेगी। अतः अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए एक ज्युनियर कालेज में लेक्चरर बन जाती है। उसका यह निर्णय उसकी स्वतंत्रता और चयन का द्योतक है।

5· **परिवेश पीड़ा और आत्मबोध**

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में जिस परिवेश को चित्रित किया गया है, वह परिवेश महानगरीय परिवेश है। महानगरीय परिवेश के अन्तर्गत पारिवारिक परिवेश को चित्रित करने का प्रयास लेखिका ने किया है। पारिवारिक परिवेश में जब पति-पत्नी संबंध बिगड़ जाते हैं, तब परिवार का पूरा परिवेश बिगड़ जाता है, जिसमें नारी की पीड़ा अत्यधिक रूप में स्पष्ट होती है। पति द्वारा पीड़ित नारी आक्रोश एवं विद्रोह करती दिखाई देती है। पितृ वर्ग के प्रति भी नारी विरोध का भाव प्रकट करती है। निरर्थकता, संबंधहीनता, व्यर्थता के कारण उसे परिवेश पीड़ा गहराई तक छूती है और वह छटपटाहट अनुभव करते हुए जीवन यापन करती है। आधुनिकता और यांत्रिकीकरण के कारण महानगरीय परिवेश का प्रभाव जन-जीवन में व्याप्त है। पति-पत्नी संबंधों में तनाव, घुटन, कुंठा का अनुभव करते हुए वह पारिवारिक परिवेश से पीड़ित रहती है। कभी-कभी परिवेश के प्रति प्रतिशोधात्मक भावना जब उठती है, तब अपने आप परिवेशजन्य पीड़ा का बोध स्पष्ट हो जाता है।

सौदामिनी : "प्रिया" उपन्यास की सौदामिनी जब स्कुल की शिक्षा प्राप्त कर रही थी तब एक दिन अचानक शहर के प्रसिध्द नेता यशवंत उसे वधू के रूप में स्वीकारने का मनोदय व्यक्त करते हैं। गरीब परिवार की यह लडकी यह मनोदय सूनकर खुश हो जाती है और तात्काल विवाह के लिए भी राजी हो जाती है। विवाहोपरान्त जब वह ससुराल चली जाती है तब उसे पता चलता है कि, उसकी सौत यहाँ पर पहले से ही मौजूद है। जब सौदामिनी उनकी चरण स्पर्श करने के लिए झुकी तब वह व्यंग्यपूर्ण हँसी से कह उठती है - " ओ रे मेरी सबसे छोटी सौत, तो मेरे नाग ने तुझे भी डंस लिया···। चल अब तु भी मरेगो, धीरे-धीरे तुझे शरबत में घोल-घोलकर जहर पिलाया जाएगा,····तू नीली पड़ती जाएगी····मेरा और अब तेरा भी यह खसम फिर तुझे भी जीते-जी मारकर किसी और को डसने बढ़ जाएगा···अरी-पूरा काला नाग है ये। इसके डंसे कोई मंत्र भी नहीं बचा सकता।"[23] सौत के इस कथन का असर पहले कुछ दिन सौदामिनी पर नहीं हुआ परंतु जब उसके पति ने उसे अतिथी के साथ एक

कक्ष में बन्द कर दिया तब उसे पति के यथार्थ रूप का दर्शन होता है। पति की इस घटिया हरकत से उसका मोहभंग हो जाता है और सौत के शब्दों की सच्चाई उसके ध्यान में आने लगती है। बार-बार सौत के शब्द उसके अंतस् में प्रतिध्वनित होते हैं। उस पारिवारिक परिवेश में उसकी स्थिति मानो पागल सी हो जाती है, उसे बंदिनी बनाया जाता है, तब वह सोचती है कि इस परिवेशे से छुटकारा पाने के लिए वह निरन्तर मौका ढूँढती रहती है। बार-बार पारिवारिक परिवेश उसे पीड़ित करता है और इसी पीड़ा में एक दिन अचानक उसे आत्मबोध होता है कि, अगर वह अपने वैवाहिक जीवन की इतिश्री करेगी, तो स्वयं का अस्तित्व अर्थवान बना पाएगी। इस विचार से वह पतिगृह से पलायन करती है, और पारिवारिक परिवेश से छुटकारा पाती है।

नीलकान्त मेहता : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का नायक मेयर नीलकान्त मेहता रायबहादुर मेहता की इकलौती पुत्री का पति है। विवाह के पूर्व वह शुभ पटेल नामक लडकी से प्यार करता था। लेकिन दौलत के खातिर वह अपने प्रेम को तिलांजलि देता है, और अचला को पत्नी रूप में अपनाता है। अचला भी विवाहपूर्व प्रेम करती है, और विवाह के पश्चात भी प्रेमी विनय को ही चाहती है। अचला के इस व्यवहार से नाराज होकर वह अचला की सेविका जया को अपनाता है और उस विधवा नारी को गर्भवति बनाकर गाँव जाने पर विवश बनाता है। जब वह चली जाती है, तब नीलकान्त वेश्या मोतीबाई को अपनाता है। परंतु मोतीबाई अपने वैयक्तिक अस्तित्व को कायम रखती है। चार नारियों के साथ संबंध स्थापित करने के पश्चात भी किसी एक को भी पूर्ण रूप से प्राप्त करने में असफल बन जाता है। राजनीतिक सफलता पाने के लिए वह बलराम की हत्या करवाता है। लोकसभा चुनाव में जीतने के लिए प्रतिद्वंद्वी को अपनी इकलौती बेटी को बहू के रूप में दे देता है। यह विवाह भी बेटी की मर्जी के खिलाफ करता है। उपर्युक्त सभी घटनाएँ जब-जब घटित हुई तब-तब उसके अंतस् में कहीं ना कहीं पीड़ा जरूर होती थी, परंतु सत्ता, पैसा और विषय वासना के कारण वह मानो अपना विवेक ही खो बैठता है। रागिणी के विवाहोपरान्त जब उसे दिल का दौरा पडता है,

तो चलचित्र के समान पूरा परिवेश उभरकर सामने आता है। इस परिवेश से उसकी पीड़ा अत्यधिक बढ़ती रहती है। उसे बोध होता है, कि उसने जानबूझकर इच्छित फलों को प्राप्त करने के लिए दूसरों की बलि चढाई है। धन के लिए शुभ्रा का प्रेम कुचल दिया, अचला को पाने के लिए विनय को नष्ट करने की कामना की। धन की स्वामिनी अचला को आत्महत्या करने पर विवश बना दिया। जया को अपनाकर उसको भी केवल दुख ही दिया। एक काँटों में घसीटती जिन्दगी जीने के लिए उसे बाध्य किया। यह सारी बातें उसके अस्तित्व को खंड-खंड करने लगी। "मैंने हर उस चित्कार को अनसूना कर दिया जो किसी जया या बलराम के ओठों से फूटता रहा···बलराम की हत्या से लेकर···अचला के आत्मघात तक को अंधा कर दिया।"[24] अतः इस परिवेश की पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए वह ठंडी के मौसम में नैनिताल चला जाता है।

श्यामा : "कोहरे" उपन्यास की श्यामा अपने पारिवारिक परिवेश के कारण अपना पूरा ध्यान धर्म, कर्म में लगाती है। पति के अनियंत्रित आचरण से कुंठित बनी श्यामा हमेशा अपने जुबान पर ताला लगाती है, पति की सभी हरकतें वह चूपचाप सहती रहती है, अपना नित्य कर्म करना बस यही उसका जीवन रह जाता है। पति मेजर सिन्हा के अनेक नारियों से अवैध्य संबंध होते हुए भी वह चूपचाप बैठती है, परंतु जब मनोरमा नामक नारी उसके पति के जीवन में आती है, तब वह अत्यंत क्रोधित होती है। जिन्दगी भर दबाया हुआ क्रोध अचानक फूट पड़ने लगता है, क्योंकि मनोरमा के पति माथुर ने श्यामा को कहा था, "मुझे बचा लो भाभी, नहीं तो मेरा घर उजड़ जाएगा···न मेजर को तुम्हारी परवाह है, न मनोरमा को मेरी, लेकिन जैसे आपको मेजर साहब की परवाह है, मुझे मनोरमा की··· वह मेरी तीन बच्चों की माँ है, और मैं उसे प्यार करता हूँ···सच भाभी मेजर मुझसे खींच लेंगे तो मैं खुद खुशी कर लूँगा···।"[25] मथुर के इन शब्दों के कारण श्यामा को बोध होता है कि अगर मैंने पति को नहीं रोका तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा। अपनी खुशी के लिए पति दूसरों के घर उजाड़ दे यह बात उसे कचोटती रहती

है। उसे लगता हे, यह अधर्म है, अन्याय है और इस अन्यास से, अधर्म से, पति को बचाना चाहती है। स्पष्ट शब्दों मे पति को फटकारती है कि, "तुमने वचन दिया था ना कि उस चुडैल से कोई वास्ता नहीं रखोंगे, आज फिर क्यों जा रहे हो।"[26] इतने दिनों तक संयत बनी शामा पति के इस दूर-व्यवहार से असंयत हो जाती है और अपनी पूरी ताकद के साथ विद्रोह करती है। उसे लगता है, अगर मैंने विद्रोह नहीं किया तो मिस्टर माथुरजी की मौत निश्चित है। उनका परिवार भी उज़ड जाएगा और साथ ही साथ उसका अपना परिवार भी उज़ड जाएगा। इस पारिवारिक परिवेश से पीड़ित होकर वह पति को विरोध करती है और अपने असली धर्म का पालन करती है।

क्षण-बोध

अस्तित्ववादी चिन्तकों ने क्षण को जीवन में महत्वपूर्ण माना है। वर्तमानकालीन मानव प्रत्येक क्षण में अपने अस्तित्व में अर्थ प्रदान करता रहता है। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में भी प्रत्येक क्षणों में अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करने वाले पात्र परिलक्षित होते हैं।

डा·मनसिज : "प्रिया" उपन्यास के डा·मनसिज अपने जीवन में क्षणों को महत्वपूण मानते हैं। जब उसके जीवन में प्रिया का प्रवेश होने लगता है, तब प्रिया अपनी जिन्दगी की सारी यथार्थता मनसिज के सामने स्पष्ट कर देती है, मनसिज प्रिया की बाते सूनकर कहता है कि, "पास्ट इज पास्ट···जो बित गया सो बित गया···जिंदगी पीछे मूड़कर देखने का नाम नहीं···आगे देखने का नाम है···एण्ड आई बिलीव इन द फिलॉसॉफी ऑफ द मोमेण्टस···सामने खड़े ये क्षण···यह धूप····यह हवा···यह तुम या मैं···यह ही सब तो है जिन्दगी के·····।"[27] मनसिज का यह कथन अस्तित्ववादी दार्शनिकों को क्षण संबंधी चिन्तन की पुष्टि करने वाला है। मनुष्य को प्रत्येक क्षण का लाभ उठाकर उससे यथा संभव अस्तित्व को यथार्थता ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि अगर एक बार क्षण आदमी के हाथों से छूट जाता है, तो वह वापस नहीं आता।

मोतीबाई : मोतीबाई एक वेश्या नारी है। वह केवल वर्तमान देखकर चलने वाली नारी है। मानव जीवन की नश्वरता और क्षणभंगुरता से वह पूरी तरह से परिचित है। इसी कारण जो क्षण उसे मिलता है, उस प्रत्येक क्षण को पकड़ना चाहती है। जब नीलकान्त कल का वादा करता है, तब वह कहता है - "मैं कल का कोई वादा नहीं कर सकती मेरे मालिक बस सामने खड़े लमोह में जाती हूँ।... इस वक्त इन लम्हों में मेरे पास जो कुछ है, भरपूर ले लो, कल की कौन जाने ? मेरा वादा क्या मैं ही न रही तो।"[28] मोतीबाई का यह कथन क्षण की महत्ता प्रतिपादित करने वाला है, प्राप्त क्षणों को जीवन में अर्थवान बनाना ही उसे उचित लगता है। उसका "मैं" शब्द प्रयोग व्यक्तिवादी जीवन-मूल्य का द्योतक है।

भीतरी संघर्ष

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में भीतरी संघर्ष का भी चित्रण पाया जाता है। उपन्यास के हर एक पात्र के अंतस् में छोटे-मोटे तौर पर भीतरी संघर्ष रहता ही है। पुरूष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों के अंतस् में अधिकाधिक संघर्ष दिखाई देता है। भीतरी संघर्ष पीड़ित नारी अपनी समस्त विद्रोहता को व्यक्त करती है। इनका भीतरी संघर्ष पारिवारिक परिवेश तथा सामाजिक परिवेश से निर्मित होता है। आधुनिक नर-नारी के जीवन का समकालीन युग के प्रति आक्रोश स्पष्ट दिखाई देता है। विवाहोत्तर संबंधों या वर्जनात्मक संस्कारशीलता के कारण निर्मित व्यवहार एवं आचारों की, नियमों की शिथिलता या निरर्थकता इसके अन्तर्गत उत्पन्न होती है। विधि-निषेधों की वजह से निर्मित चुभन के कारण आधुनिक नारी मजबूर बनी दिखाई देती है। अविवाहित, विवाहिता, परित्यक्ता और विधवा नारी दोहरे रूप में जीवन यापन करने के लिए अभिशप्त बन गयी है, जिससे भीतरी संघर्ष उसके अंतस् में हमेशा चलता रहता है।

सौदामिनी : "प्रिया" उपन्यास की सौदामिनी अध्यापिका नारी है। उसका विवाह शहर के नेता यशवंतजी के साथ हो जाता है। विवाह के समय

सौदामिनी का विश्वास था, कि यशवंत जैसा बलिष्ठ पुरूष उसे सुरक्षा देगा, छाह देगा। परन्तु सौदामिनी को न विश्वास, न सुरक्षा, न छाह मिली। पति द्वारा प्रताड़ित, शोषित सौदामिनी पतिगृह से पलायन कर आत्मनिर्भय बनकर जीवन यापन करती है। जिस स्कूल में वह नौकरी करती है, उसी स्कूल के प्रधानध्यापक केशवजी के ओर वह आकर्षित होती है। केशवजी के मन में भी सौदामिनी के लिए विशेष प्रेमभाव था। वे सौदामिनी के खातिर अपनी पत्नी और बच्चों को छोडने के लिए तैयार भी थे। वह एक प्रेमिका के साथ-साथ एक माता, एक औरत भी थी। अतः वह अपने प्रेम भाव को अपने ही अंतस् में रखकर केशवजी का अपनत्व का प्रस्ताव ठुकराती हे, पर इस ठुकराव से भीतरी संघर्ष की शिकार बन जाती है। अपने अंतस् के इस संघर्ष को एक बार प्रिया के सामने स्पष्ट करते हुए वह कहती है कि, "केशवजी मेरे लिए अपनी पत्नी और बच्चों से विच्छेद के लिए तैयार थे···मेरे लूटे-पिटे नारित्व को प्यार, सुरक्षा देने के लिए···मेरे प्रियत्व को स्वीकारने के लिए···किन्तु मैं औरत होकर एक औरत का घर कैसे उजाड़ती यह मुझसे नहीं हो सका···और ····मैं और केशवजी अपने-अपने घेरे में तिल-तिल जलते रह गये।"[29] सौदामिनी विवाहोत्तर परपुरूष प्रेम में पड़ती है जरूर अपना विवेक नहीं छोड़ती और इसी विवेक के कारण वह केशवजी को केवल अपने हृदय में ही स्थान देती है और बाह्य तौर पर उनसे दूर ही रहती है। जीवन भर इस प्रेम के खातिर तिल-तिलकर जलती रहती है। उसका यह तिल-तिलकर जलना उसके भीतरी संघर्ष को स्पष्ट करता है।

सिमी : "कोहरे" उपन्यास की सिमी सुनील के साथ प्रेम विवाह करती है। विवाहोपरान्त उसका पति सुनील पुरूष अहंम् का रोब जमाने लगता है। उसको अपने विचारों के अनुसार चलने पर बाध्य करता रहता है। स्वयं स्वैराचरण करता है और सिमी को बंधनों में बाँधता रहता है। एक दिन जब वह अपने ही घर में परस्त्री को सुनील के साथ देखती है तब वह क्रोधित हो जाती है और उसी क्षण सुनील के साथ संबंध विच्छेद कर पापा के घर लौट आती है। कुछ दिनों बाद उसकी मम्मी सुनील के आने के बारे में पूछती है तब सुनील का नाम सूनकर

ही उसका भीतरी संघर्ष तेज हो जाता है - "सुनील का नाम मम्मी के ओठों से गालियों की तरह छूटकर जैसी असाध्य पीड़ा से मेरी पसलियाँ टूटने लगी हैं। मैं बात बदलने का प्रयास करती हूँ···भीतर उठती तेज दर्द के लहरों को उमड़ते अश्रुओं को रोकने को प्रयास करती।"[30] इस कथन से सिमी का भीतरी संघर्ष स्पष्ट होता है। आधुनिक युग की नारी सिमी पति के स्वैराचरण से भीतरी संघर्ष की अभिशप्त जिन्दगी ढ़ोती रहती है।

श्यामा : "कोहरे" उपन्यास की श्यामा भारतीय परंपरा और संस्कृति के अनुसार पति को परमेश्वर मानती है। परन्तु उसका यह पति परमेश्वर उसके केवल पत्नीत्व प्रदान करता है, प्रियत्व नहीं। जिंदगी भर श्यामा इस वेदना से तडपती रही। अपना मन बच्चों और भगवान में तथा अपने कर्तव्यों में लगाती रही। पति के कुकर्म से उसका अंतस् निरन्तर जलता रहता है। वह एक दिन अपनी बेटी को कहती है, "तो आज समझ भी ले सिमी। मेरा भी बोझा सुन ले कि मैं कुछ हल्की हो जाऊं····नहीं तो मैं घुट जाऊंगी···बेटी···घुट जाऊंगी।"[31] उपर से शांत, संयत दिखाई देने वाली श्यामा के अंतस् में कितना संघर्ष चल रहा है यह बोध उसकी बेटी सिमी को हो जाता है। इतने दिनों तक अपने हृदय की वेदना छिपाकर माँ कैसी जीती रही। माता के हृदय का यह संघर्ष सिमी की आँखें खोल देता है।

अचला : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास की अचला अमीर परिवार की इकलौती बेटी है। उसका विवाह नीलकान्त से हो जाता है। उसके पापा अपने धन, वैभव, ऐश्वर्य का रक्षण करने के लिए नीलकान्त का चुनाव करते हैं। परंतु अचला को यह विवाह मंजूर नही था। धन रक्षा के लिए वह विवाह तो करती है पर वह विवाह नहीं, अपने जीवन का सौदा ही करती है। विवाहोपरान्त प्रेमी विनय से गर्भ धारण करती है, तब नीलकान्त उसे फटकारता है, और उस शिशु को जन्म न देने की बात कहता है। नीलकानत स्वयं विवाहोपरान्त विधवा नारी जया से अवैध संबंध रखता है और उसे मातृत्व प्रदान करता है। इस अभिशप्त मातृत्व के कारण जया शहर छोड़कर गाँव चली जाती है। पति का यह स्वैराचरण चल सकता है

पर पत्नी उसके ही बंधनों में बँधी रही। यह पुरूष प्रधान संस्कृति का ही परिणाम है ऐसा उसे लगता है। वह कहती है - "स्त्री के लिए नाजायज मातृत्व अभिशाप तक बन सकता है। आपने कभी नाज़ायज शिशु के पिता को नदी या तालाब में डूब मरने या गले में फाँसी का फन्दा लगाते देखा है···यह विवशता तो नारी की ही होती है, प्रकृति की दी हुई भी, समाज की दी हुई भी।"[32] अचला का कथन पुरूष प्रधान संस्कृति की निरंकुश सत्ता का द्योतक है। धर्म ने भी पुरूष को आज़ादी दी है और नारी को बंधनों में जकड़ा दिया है। इसीकारण वह आज भी छली जाती है, शोषित होती है और भीतरी संघर्ष से गुजरती है।

संत्रास, निराशा, व्यथा

वर्तमानकालीन परिवेश ने वैज्ञानिक प्रगति तथा आधुनिकता के कारण जीवन-मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है। आज चारों ओर एक आतंकमय वातावरण व्याप्त है। इसीकारण संत्रास, निराशा, व्यथा, शून्यता आदि का बोध गहराता जा रहा है। प्रेम, स्नेह, आस्था दिन-ब-दिन कम हो रही है। हेड़गर के अनुसार संत्रास से ही शून्यता उत्पन्न होती है। जब मनुष्य स्वयं को संसार से उदासिन बन जाता हे, तो वह शून्यता बोधे अनुभूत करने लगता है। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में निराशा, संत्रास, व्यथा, शून्यता आदि का बोध पाया जाता है। भारतीय परिवेश की सापेक्षता में ही वह ग्रहण किया गया है।

सिमी : "कोहरे" उपन्यास की सिमी विवाहिता नारी है। लेकिन पति के जीवन में जब परस्त्री का प्रवेश होता है, तो वह पति को छोड़कर चली जाती है। प्रेम-विवाह की असफलता के कारण वह कुंठित बनती है। पतिविहीन जीवन यापन करते वक्त निराशा से उसका मन भर जाता है। एक ओर परित्यक्ता जीवन तो दूसरी ओर पति के घिनौने आरोपों के कारण वह व्यथित होती रहती है। सुनील जान-बूझकर पत्नी पर चरित्रहीनता का आरोप लगाता है, जिससे सिमी का जीवन संत्रस्त बन जाता है। गलत आरोपों के कारण वह हमेशा व्यथित, पीड़ित रहती है। जब नया डायवर्स बिल पास हो जाता है। और पिताजी अखबार में छपी न्यूज उसे दिखाते है, तब सिमी को लगता है कि "कैसे जिन्दगी की धड़कने, जीवन

के स्पंदन, संबंधों के साँसों के गुंठे पाश···अखबार की न्यूज बनकर रह जाते हैं···। अखबारों में आए दिन प्रेम से संबंधित चर्चाओं को प्रमुखता दी जाती है चाहे फिर वह लडकी भगा ले जाना हो, चाहे प्रेमिका की हत्या हो···। मुझे लगा है, मेरी भी हत्या हो गई है···या मैंने स्वयं आत्महत्या कर ली है···। "हत्या या आत्महत्या"।[33] सिमी को इस संत्रस्त अवस्था में मम्मी की याद आती है और उसे लगता है, मम्मी तो उससे भी अधिक संत्रस्त है फिर भी मम्मी उसे प्रशांत के बारे में सोचेने की प्रेरणा देती है। निराशा, संत्रास, कुंठा, घुटन से छुटकारा पाने के लिए यह एक मार्ग दिखाई देता है।

मेजर सिन्हा : "कोहरे" उपन्यास के मेजर सिन्हा फौज से अवकाश ग्रहण कर अपनी पारिवारिक जिंदगी खुशी से चैन से बिताना चाहते हैं। अपने बच्चों को अर्थात निशीथ और सिमी को आधुनिक युग के अनुसार स्वतंत्र निर्णय लेने की अनुमति प्रदान करते हैं। सिमी और निशीथ दोनों भाई-बहन अपनी मर्जी के अनुसार अपने जीवन साथी का चुनाव करते हैं। परंतु दोनों का विवाह असफल ठहरता है। दोनों विवाह विच्छेद कर पापा के घर वापस लौट आते हैं। अपने पुत्र और पुत्री के वैवाहिक जीवन की विडम्बना को देखकर मन ही मन निराश हो जाते हैं। अपनी इस व्यथा को भूलने के लिए बियर की जगह व्हिसकी पीने लगते हैं और निरन्तर शून्य में ताकते रहते हैं। अपनी व्यथा भूलने के लिए शराब का सहारा लेते हैं, उनका खंड-खंड व्यक्तित्व माँ, सिमी और निशीथ देखते हैं। "होश आए तो फिर पी लेना, बेहोश होने के लिए। पापा ने निशीथ के सिर पर भी हाथ फेरा है····मैंने इस स्पर्श को भी पढ़ लिया है···निशीथ के भी सिर पर हाथ फेरते पापा के हाथों में फूलों का ही स्पर्श है। किन्तु जिन्दगी के यथार्थ के काँटे उनमें भी हैं। पापा इन काटों से न मुझे बचा सकते हैं न निशीथ को।"[34] पापा का यह आचरण उनके हृदय को पहुँची गहरी ठेंस का द्योतक है। पुत्रों के जीवन की विडम्बना के कारण वे खंड-खंड हो चुके हैं। जीवन की यह त्रासदी बोतल के जरिए समाप्त करना चाहते हैं।

मेयर नीलकान्त : मेयर नीलकान्त शहर का एक सफल नेता है। अपने जीवन में विविध षड़यंत्र रचता है और यश प्राप्त करता है। अनेक नारियों का शोषण कर उन्हें तडपने पर विवश किया है। इतना ही नहीं तो अपनी पुत्री को भी अभिशप्त जिंदगी जीने के लिए मजबूर करता है। जब एक दिन अचानक उसे दिल का दौरा पडता है, तब उसका विवेक जागृत हो जाता है और उसे अपने किये पर पश्चाताप होने लगता है। अंतस् की यह पीड़ा दिल के दौरे के माध्यम से शारीरिक रूप से बाहर तो प्रकट हुई, पर अंतस् में वैसे ही मौन बनी रही जब वह अपनी जय जयकार की ध्वनियाँ सूनता है, तो महसूस करता है कि वह इन ध्वनियों के कारण पागल होता जाएगा। वह कहता है - "मैं सन्नाटा चाहता हूँ···मैं शब्दहिन मौन चाहता हूँ···मैं शांति चाहता हूँ···अर्थात मैं मृत्यु चाहता हूँ····मैं और जीना नहीं चाहता।"[35] नीलकान्त के इस कथन से उसके अंतस् की वेदना स्पष्ट होती है। सत्ता, पैसों का लालच मनुष्य को अंधा बना देता है। परंतु इन सब बातों के परे मनुष्य का अस्तित्व महत्वपूर्ण है। ऐसा होते हुए भी जब मनुष्य धन, यश, कीर्ति प्राप्त करता है, तदोपरान्त मृत्यु की कामना करता है तो निश्चित ही उसकी जीवन की व्यथा का बोध स्पष्ट हो जाता है।

अचला : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास की अचला संपन्न परिवार की बेटी है। जायदाद की देखभाल के खातिर पिता द्वारा चुने गये वर के साथ वह विवाह करती है और अपने प्रेमी के साथ भी संबंध बनाए रखती है। उसका पति भी विवाहोत्तर दूसरी नारियों के साथ संबंध रखता है, वह कुछ भी नहीं कहती। लेकिन उसका पति उसे प्रेमी की संतान को जन्म देने से रोकता है, तब उसका मन व्यथित होता है। उसे लगता है कि, इसके लिए समाज के विधि-निषेध ही कारण है क्योंकि उसका पति अवैध संबंध से जया को संतान होकर भी उस पर बंधन लादे जाते हैं। समाज द्वारा बनाये गये बंधन पुरूष के लिए बहुत शिथिल होते है, लेनिक नारी के लिए शिकंजे जैसे कठोर होते हैं। उसे त्याग और बलिदान की सीख दी जाती है और इसी सीख के कारण वह प्राणहीन होती रहती हैं। घुट-घुटकर दम तोड़ना बस। यही उसके पास रह जाता हैं।[36] नारी और पुरूष के जीवन में

किया जाने वाला यह अंतर अचला को संयस्त बनाता है और आखिर निराशा और वेदना के कारण वह आत्महत्या कर वह दम तोड़ देती है।

अलगाव बोध

अलगाव का सीधा अर्थ है अलग होने की अवस्था, क्रिया या भाव। डा॰बैजिनाथ सिंहल ने इस शब्द को परिभाषा बद्ध किया है। उनके अनुसार - "अलगाव की सर्वसामान्य परिभाषा यह है कि अलगाव में व्यक्ति का भौतिक, मानसिक स्तरों पर जीवन के किसी पहलू किसी अन्यगत भौतिक, अभौतिक संबंध या निज व्यक्तिगत संबंध या व्यक्ति विचार शक्ति से कट जाने का अहसास रहता है।"[37] विवेच्य हिन्दी उपन्यासों में अलगाव विविध आयामें में व्यंजित हुआ है। पति-पत्नी संबंधों में अलगाव, पिता और पुत्री में अलगाव।

पति-पत्नी संबंधों में अलगाव

आधुनिक युग में विविध क्षेत्रों में परिवर्तन दिखाई देता है। शिक्षित महानगरीय स्त्री-पुरूष के जीवन में भी यह परिवर्तन परिलक्षित होता है। इन लोगों के जीवन में अलगाव बोध का भी निर्माण हुआ है। अलगाव के विविध कारण दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों मे प्राप्त होते हैं। भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के अनुसार प्राचीन काल में पत्नी, सेवा, त्याग और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति थी। परंतु आधुनिक शिक्षित नारी आज पति की सहचारिणी बनना चाहती है गुलाम नहीं। वह व्यक्ति नारी बनकर जीवन यापन करना चाहती है। परंतु उसका यह रूप पुरूष के अहंम् को चोट पहुँचाता है। इसीकारण पारिवारिक संबंधों में अलगाव निर्माण होने लगा है।

सौदामिनी : दीप्ति खण्डेलवाल लिखित "प्रिया" उपन्यास में सौदामिनी के पति यशवंतजी अपनी पत्नी को केवल उपभोग का साधन के रूप में देखते हैं। इतना ही नहीं तो उसे अतिथियों के भोग का साधन भी बनाते हैं। पति का यह चाल-चलन देखकर उसके मन में पति के प्रति घृणा भाव निर्माण हो जाता है। उसी दिन मन-ही-मन वह पति से अलगाव महसूस करती है और एक दिन

मौका पाकर घने अंधकार में वह उस भव्य भवन से भाग निकलती है और अपने अपाहिज पिता की शरण में आती है।"[38] जब उसने नेता यशवंत को पति रूप में स्वीकार किया था, तब उसके मन में प्रति के प्रति बेहद लगाव निर्माण हुआ था, लेकिन जल्द ही उसका मोहभंग हो जाता है और पति का यथार्थ रूप सामने आता है, तब उस पति के प्रति मन में अलगाव बोध निर्माण होता है।

चित्रा : "प्रिया" उपन्यास की चित्रा सौदामिनी की बड़ी बेटी है। वह परिवार वालों को छोडकर सुरेश के साथ भाग जाती है और उसीके साथ रहने लगती है। दो बच्चों की माँ बनी चित्रा अपने प्रेमी के आचरण से तंग आकर पुनश्च माँ के परिवार में लौट आती है। उसका यह लौटना पति-पत्नी संबंधों में अलगाव का द्योतक है।

श्यामा : "कोहरे" उपन्यास की श्यामा एक जमींदार की लड़की है। वह माधव से प्यार करती है। परन्तु परिवार वाले उसका विवाह मेजर सिन्हा के साथ करा देते हैं। मेजर सिन्हा आधुनिक विचारों वाले हैं तो श्यामा परंपरागत विचारों की नारी है। अतः प्रारम्भ से ही उनके वैवाहिक जीवन में अलगाव निर्माण होता है। मेजर सिन्हा का आचरण पाश्चात्य ढंग का आचरण था। क्लब जाना, बियर लेना, प्रेम करना उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया था। श्यामा पति की ये सभी हरकते सहती आयी, पर जब उसका पति तीन बच्चों वाली मनोरमा के साथा रंगरेलियाँ मनाता है, तब उसे बहुत दुख होता है, क्योंकि अगर मनोरमा अपने पति को छोड़कर आएगी तो शायद उसका पति आत्महत्या भी कर लेगा ओर उस परिवार को बचाने के लिए श्यामा छपटटाती है। लेकिन पति मेजर सिनहा उसकी छपटपटाहट की कन्द्र नहीं करते। इतना ही नहीं तो उसकी सतित्व की खिल्ली उड़ाते हैं। तो वह कह उठती है - "बताओ कैसी-कैसी सति हूँ मैं समज सकोगे ? तो सुनो मैं तुम्हारे नाम का व्रत रखती हूँ इसलिए की तुम मेरे पति के नाम पर मेरे सामने हो नहीं तो व्रत तो मैं अपने सत के नाम पर रखती हूँ, तुम्हारा नाम तो बहाना है।"[39] श्यामा का यह कथन उन दोनों के वैवाहिक जीवन की पोल खोल देता है। वे दोनों साथ-साथ रहते हैं। बच्चों का भरण-पोषण

करते हैं। सभी जिम्मेदारियाँ निभाते हैं। परंतु उनके अंतस् में एक दूसरे के प्रति लगाव नहीं है। बाध्य तौर पर वहाँ अलगाव दिखाई नहीं देता परंतु उनके अंतरंग में अलगाव बोध है, यह स्पष्ट हो जाता है।

सुनील : "कोहरे" उपन्यास का सुनील शिक्षित आदमी है। वह अपनी पत्नी को अपने विचारों पर नचवाना चाहता है। जब वह विवाह के उपरान्त परस्त्री को घर में लाता है, तब उसकी पत्नी सिमी अत्यन्त क्रोधित हो जाती है। उसका यह क्रोध देखकर सुनील भी उसे दो जवाब देता है। बातों ही बातों में सिमी कानुनी कारवाई की धमकी देती है। तब वह कहता है - "मैं अपने डाइवर्स का सूट पहले ही फाईल कर चुका हूँ।"[40] सुनील का यह आचरण पति-पत्नी संबंधों के अलगाव का द्योतक है। परिणामतः उनका संबंध विच्छेद हो जाता है और कुछ दिनों बाद कानुनी रूप से विवाह विच्छेद भी हो जाता है।

गंगा : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास की गंगा अनपढ़ नारी है। उसका विवाह उमाकान्त पैसादी से हो जाता है। उमाकान्त उसे अपने ढंग के अनुसार जीने नहीं देता। उसे बन्धनों में जकड़ना चाहता है। गंगा जैसी पवित्र गंगा पर वह निरन्तर लांछन लगाता रहता है। गंगा के मन में हिन-दीन लोगों के प्रति अपार आस्था थी। एक दिन जब उसके गाँव का कान्हा नामक आदमी जो पहले कभी उसका प्रेमी था, उसे याचना करता है कि "मुझे मदद करो। उसकी याचना सूनकर वह उसे अपने दूकान से रसद दे देती है। जब पति को यह बात मालूम होती है तब उन दोनों में संघर्ष बढता है। पति उसे पुनःश्च अपमानित करता है तब वह कहती है - "तुम जानते हो मैंने जब से तुम्हारा हाथ पकड़ा है, अपना धर्म पूरा निभाया है···मैं कुलडा नहीं हूँ, नील के बापू न कान्हा कमीना है···कमीने सिर्फ तुम हो।"[41] गंगा के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि पति-पत्नी संबंधों में शक के कारण अलगाव निर्माण हो जाता है। वास्तव में गंगा पत्नी धर्म निभाती रही। लेकिन पंसादी ने अपना पति धर्म नहीं निभाया। परिणामतः इस अलगाव के कारण गंगा कान्हा की मृत्यु के बाद अपनी भी जान दे देती है और पति लांछन से मुक्त होती है।

माता-पिता से अलगाव

विवेच्य हिन्दी उपन्यासों में माता या पिता से अलगाव तथा माता-पिता से अलगाव रखने वाले पात्र दिखाई देते हैं।

चित्रा : "प्रिया" उपन्यास की चित्रा सौदामिनी की बड़ी बेटी है। जब वह जवान हो जाती है, तब अपनी मर्जी के अनुसार सिनेमा देखने चली जाती है। सुरेश नामक लडके के साथ घूमती है। जब माँ ऐसी हरकतें करने पर रोक-थाम लगाती है तो वह स्पष्ट शब्दों में माँ को कहती है कि - एक बार नहीं बार-बार मैं सुरेश के साथ घूमने जाऊँगी। माँ उसे टाँगे तोड़ने की धमकी देती है तो वह कहती है कि, "अच्छा आप मेरी टाँगे तोड़ेगी, उसके पहले मैं आपका हाथ ही मरोड़ दूँगी।"[42] चित्रा का यह कथन उसकी उद्दंडता को स्पष्ट करता है तो माँ के प्रति उसका कितना अलगाव है, यह भी सूचित करता है। अपनी माता कलंकिनी समझने वाली चित्रा प्रेमी के साथ भाग जाती है। दोनों के मन में (माँ-बेटी) एक दूसरे के प्रति अलगाव भाव निर्माण होता है।

रागिनी : "प्रतिध्वनियाँ" की रागिनी मेयर नीलकान्त की इकलौती बेटी है। वह विवाहपूर्व ही प्रेम करती है, परंतु उसके पापा लोकसभा का चुनाव जीतने के लिए अपने प्रतिद्वंद्वी के बेटे के साथ विवाह कर देते हैं। नीलकान्त का यह आचरण, पुत्रों के प्रति उसका अलगाव स्पष्ट कर देता है। पुत्री याचना करती रही कि पापा मेरा सौदा मत करो। मुझे उसीकी पत्नी बनाओ जो तुम्हारे संपत्ति को नहीं सिर्फ मुझे चाहता हो।"[43] रागिनी का यह कथन अनसूना कर पिता अपने राजनीतिक स्वार्थ को प्रधानता देते हैं और इसी कारण पिता-पुत्री में अलगाव निर्माण हो जाता है। ससुराल जाते वक्त रागिनी पापा को कहती है - "आखिर आपने मुझे उम्रभर कैद दे ही दी···उम्रभर कैद दे ही दी···।"[44] रागिनी का यह वक्तव्य उम्रभर पिता से अलगाव का द्योतक है। शायद जीवन में वह कभी भी पापा से लगाव निर्माण नहीं कर पाएगी।

निशीथ : "कोहरे" उपन्यास का निशीथ मेजर सिन्हा और श्यामा का इकलौता बेटा है। वह अपने मम्मी-पापा को खबर दिए बिना ही रजिस्टर विवाह करता है। जिसकी वजह से मम्मी-पापा के मन में दरार पड जाती है। वे दोनों अपने-अपने ढंग से इस गम को भूलाने की कोशिश करते हैं। एक दिन अचानक निशीथ के कमरे से लड़ने-झगड़ने या तोड़ने-फोड़ने की आवाज आती है और तब पापा कहते हैं - "क्या घर को पूरा नरक ही बना दोंगे ?····तो आपका स्वर्ग आपको मुबारक हो····कहता निशीथ बेदर्दी से हमारी छाति रोंदता चला गया सीधे इंग्लंड अपने ससुराल···।"[45] निशीथ का चले जाना उसके अंतस् के अलगाव बोध को स्पष्ट करता है।

अकेलापन

आधुनिक जीवन में अकेलापन बढ़ने लगा है। अपने क्रिया-कलापों के कारण या अपने स्वार्थी दृष्टिकोनों के कारण मनुष्य समाज में रहकर भी समाज से कटकर रहता है। अतः इस भीड़ भरे संसार में स्वयं को अकेला पाता है। दूसरों के साथ सार्थक संबंधों को खो देता है। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में कुछ पात्र अकेलेपन की त्रासदी को झेलते नज़र आते हैं। यह अकेलापन कभी-कभी उनकी अपनी करनी से निर्मित होता है। डा·गोवर्धनसिंह शेखावत का कहना है कि, "हमारा अकेलापन औद्योगिकरण, यांत्रिकता, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेकारी, आर्थिक संकट, अराजकता आदि स्थितियों के कारण उत्पन्न है। अतः यह अकेलापन आरोपित न होकर सही प्रतीत होता है।"[46] परंतु विवेच्य उपन्यासों के पात्रों में जो अकेलापन दिखायी देता है,वह मनुष्य के करनी से निर्मित है, तथा पारिवारिक संबंधों के कारण निर्मित हैं।

नीलकान्त : "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास के नीलकान्त मेहता विपुल ऐश्वर्य के धनी हैं। धन के साथ-साथ सत्ता भी उनके पास है। हमेशा वे भीड़ में रहते हैं। भीड़ का जयजयकार तो सदा उनके साथ रहता है किन्तु उस भीड़ भरे माहौल में अकेलेपन का विद्रुप भी उनके साथ रहता है। यह अकेलापन उन्हें बुरी तरह कचोटता है। डा·बन्सल की बातें उन्हें अकेला कर जाता है। डाक्टर को हमेशा

लगता है कि नीलकान्त एक सफल आदमी है। सुख का प्रतीक है। पर मन-ही-मन नीलकान्त को लगता है कि वह कितना दग्ध, कितना आहत, कितना अकेला है···।"[47] नीलकान्त का यह अकेलापन उसकी करनी से निर्मित है। अचला की मौत, बलराम की मौत और रागिनी को जानबूझकर विवाह वेदी पर चढ़ाना, जया को अवैध्य मातृत्व प्रदान करना, शुभ्रा पटेल को प्रेम में धोखा देना, राजनीति में षड़यंत्र रचना ये सभी बातें उसे अब यातनाएँ देने लगती हैं। उसके पाप कृत्यों की प्रतिध्वनियाँ उसके अंतर्मन में गूँजती रहती हैं। परिणामतः वह भीड़ भरे माहौल में भी अकेलापन महसूस करता है।

सिमी : "कोहरे" उपन्यास की सिमी प्रेम विवाह करती है। परन्तु पति के स्वैर आचरण के कारण उनका विवाह विच्छेद हो जाता है। विवाह-विच्छेद के दंश से आहत सिमी को एक दिन उसकी सहेली पुष्पा मिलती है। दोनों मिलकर बहुत बातें भी करती हैं। बातों-बातों में पुष्पा अपने पति की बहुत प्रशंसा करती है। सिमी को पुष्पा का विवाह-पूर्व प्रेमी सुनील के साथ मिलना-जुलना मालूम था। इसीकारण वह उसके आगे स्वयं को पराजित मानने लगती है। वह कहती है - "पुष्पी मिलने के बाद में और टूट गई हूँ···और पराजित हो उठी हूँ···और अकेली····।"[48] सिमी का यह टूटना और अकेलापन महसूस करना सुनील की करनी के कारण सुनील का अनैतिक आचरण सिमी को झक-झोर देता है। अतः मम्मी-पापा के साथ रहते हुए भी वह स्वयं को अकेला पाती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि,

1· व्यक्तिवाद में व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसका विवेचन किया जाता है।

2· व्यक्तिवाद का एक विकसित रूप अस्तित्ववाद है। अस्तित्ववादी दर्शन ने व्यक्तिवाद को सबसे अधिक समर्थन दिया है। अतः अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद का परिपोषक है।

3· अस्तित्वबोध और अस्तित्ववाद शब्द प्रयोग में सूक्ष्म भिन्नता नज़र आती है। अस्तित्वबोध विस्तृत है और अस्तित्ववाद विशिष्ट चिंतनधारा तक सीमित है। अस्तित्वबोध में अस्तित्ववाद के तत्व सन्निहित रहते हैं।

4· विवेच्य उपन्यासों के पात्रों में ईश्वरीय तथा अनिश्वरीय अस्तित्वबोध के दर्शन होते हैं। यह बोध अस्तित्ववादी चिन्तन और भारतीय परिवेश के अनुसार है।

5· आज के पुरूष या नारी पात्र अपने जीवन के हर एक क्षेत्र में वैयक्तिक अस्तित्व को बनाए रखने की कोशिश करते हैं, परम्परागत बंधनों को ठुकराकर वे अपनी वैयक्तिकता स्पष्ट करते हैं।

6· विवेच्य उपन्यासों के नारी-पुरूष पात्र विवाह के बारे में तथा आत्म-निर्भयता के बारे में अपनी इच्छा के अनुसार विशिष्ट जीवन का चयन करते हैं।

7· विवेच्य उपन्यास के नारी पात्र परिवेश पीड़ा से त्रस्त और कुंठाग्रस्त दिखाई देते हैं। विशेषतः पारिवारिक परिवेश से वह पीड़ित होते रहते हैं और इस पीड़ा बोध के कारण ही उन्हें आत्मबोध होता रहता है और वे अपने अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करने की कोशिश करते हैं।

8· आज की नारी और पुरूष चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित लेकिन मानसिक संघर्षों से जूझ रहे हैं। भीतरी संघर्ष का बोध समय-समय पर दिखाई देता है। निराशा, संत्रास, व्यथा आदि का बोध परिस्थिति या परिवेशजन्य होता रहता है, फिर भी वह पात्र अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

9· आज के नारी-पुरूष के जीवन में पारिवारिक अलगाव दिखाई देता है। विशेषतः पति-पत्नी संबंध, माता-पुत्री संबंध, पिता-पुत्री संबंध में अलगाव अन्तर निहित है।

10· आज के नारी-पुरूष अकेलेपन की समस्या से त्रस्त नज़र आते हैं।

11· आमतौर पर यह स्पष्ट होता है कि, अनेक समस्याओं के पश्चात भी नारी-पुरूष अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्षरत हैं।

12· विवेच्य उपन्यासों में विविध मनोव्यापार तथा क्रिया-कलापों के द्वारा उनका अस्तित्व-बोध उजागर हुआ है। अस्तित्ववादी चिन्तन को पूरी तरह से परिलक्षित कर पात्रों को चित्रित करने की कोशिश नहीं की गई है।

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची

1. Encyclopedia Britanica-vol.12 P.257 - Alexis de Tocqueville who coined the word, described it in terms of a kind of moderate selfishness, disposing men to be concerned only with their own small circle of family and friends.

2. Encyclopedia Britanica,vol.12, P.257 - Individualim is a term somewhat similar in meaning to liberalism. Both concepts place high value on the freedom of the individual.

3. हिन्दी विश्वकोश-खण्ड 10 - नागरी प्रचारणी सभा, सम्पादक, प्र·सं·1969, पृ·198

4. अस्तित्ववाद और नई कविता - प्रकाश दीक्षित, पृ·37

5. हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना - डॉ·एन·के·जोसफ,सं·1989,पृ·23

6. वही, पृ·32

7. बृहद अंग्रेजी हिन्दी कोश - पहला भाग - हरदेव बहारी,सं·1969,पृ·666

8. Encyclopeadia Britanica - vol.8, P.968

9. हिन्दी विश्वकोश खण्ड-1 - रामप्रसाद त्रिपाठी, सं·1973, पृ·310

10. Existentialism for and Against Poul - Roubilzek R.P.40, Ed.1966
God is dead God remiens dead and who have killed him.

11. हिन्दी उपन्यास - डॉ·सुषमा धवन, सं·1961, पृ·163-164

12· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·33

13· वही, पृ·33

14· EXISTENTIALISM - Jean Paul Sartre, P.No.27, Ed.1947 "Dostoie Vsky said ,"If God didn't exist everything would be posible."

15· पिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976, पृ·43

16· वही, पृ·43

17· वही, पृ·140

18· अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोन्तर हिन्दी साहित्य - श्यामसुन्दर मिश्र, सं·1980, पृ·271

19· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·23

20· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978 पृ·74

21· पिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976, पृ·33

22· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·48

23· पिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976 पृ·115

24· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978, पृ·104-105

25· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·76

26· वही, पृ·74

27· पिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976, पृ·140

28· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978, पृ·72

29· पिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976, पृ·120

30· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·45-46

31· वही, पृ·75

32· वही, पृ·84

33· वही, पृ·60

34· वही, पृ·71

35· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978, सं·103

36· वही, पृ·83-84

37· अलगाव दर्शन और साहित्य - डॉ·बैजनाथ सिंह, सं·1982, पृ·176/177

38· प्रिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976, पृ·119

39· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·74

40· वही, पृ·27

41· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978, पृ·29

42· प्रिया - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1976, पृ·33

43· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978, पृ·12

44· वही, पृ·14

45· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·48-49

46· नयी कहानी : उपलब्धि और सीमाएँ - गोवर्धन सिंह शेखावत, सं·1979 पृ·273-274

47· प्रतिध्वनियाँ - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1978, पृ·15

48· कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, सं·1977, पृ·58